[2019] 13 एस. सी. आर 406

हुगली मिल्स कंपनी लिमिटेड

वी.

पश्चिम बंगाल और और का राज्य

(2019 की आपराधिक अपील संख्या 1571)

अक्टूबर 17, 2019

[मोहन एम. शांतनागौदर और अजय रस्तोगी, जे. जे.]

कंपनी अधिनियम, 1956:

धारा 630(1) और (2) – शिकायतकर्ता कंपनी द्वारा आपराधिक शिकायत – अभियुक्त के खिलाफ आपराधिक शिकायत जिसमें आरोप लगाया गया है कि वह आवासीय परिसर (जो उसे कंपनी के निदेशक के रूप में दिया गया था) का कब्जा कंपनी के निदेशक पद छोड़ने के बाद भी नहीं दे रहा – आरोपी को बेदखल करने के लिए भी आवेदन दायर किया – आरोपी की दलील यह थी कि उसके और संपत्ति के मूल मालिकों के बीच मौखिक करार था कि उसके द्वारा विक्रय मूल्य दिये जाने पर सम्पत्ति उसे हस्तांतरित कर दिया जाएगा । इसके बाद, आरोपियों ने संविदा के विर्निदिष्ट अनुपालन और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना करते हुए विक्रेताओं के खिलाफ मुकदमा दायर किया – कब्जे के संबंध में यथास्थिति का निर्देश देने वाले मुकदमे में अस्थायी निषेधाज्ञा जारी की गई थी – आवेदन यू/एस। 630(2) की अनुमत । अभियुक्त को बेदखल करने का निर्देश – पुनरीक्षण न्यायालय ने धारा 630(2) के तहत आवेदन में पारित आदेश की पुष्टि की –द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत याचिका में उच्च न्यायालय ने निम्न न्यायालय के निष्कर्षों को खारिज कर दिया – सर्वोच्च न्यायालय में अपील – **अवधारित:** सिविल मुकदमा लंबित होने से एक ही संपत्ति के संबंध में धारा 630 के तहत शिकायत पर रोक नहीं लगेगी, भले ही समान पक्षों के बीच, यदि संपत्ति पर कंपनी के अधिकार के संबंध में कोई प्रामाणिक विवाद न हो– वर्तमान मामले में, कोई वास्तविक विवाद नहीं है क्योंकि अभियुक्त का दावा मौखिक समझ पर आधारित है – केवल अस्थायी निषेधाज्ञा जारी करने से विवाद वास्तविक नहीं हो जाएगा – इसलिए, सिविल मुकदमे के लंबित रहने और उसमें दी गई अंतरिम राहतों से धारा 630 के तहत आपराधिक मुकदमा चलाने पर रोक नहीं लगेगी –धारा 630 की उदार व्याख्या की जानी चाहिए ताकि कंपनी की संपत्ति की शीघ्र वसूली की सुविधा मिल सके – ठोस आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान धारा 630 (2) के तहत आवेदन की अनुमति देने में कोई त्रुटि नहीं है – विर्निदिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – एस 41(बी) और (डी)।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

एस 482 – अंतर्निहित शक्तियो का दायरा, विज़–ए–विज़ एस 397 (2) – अवधारितः उच्च न्यायालय, धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, धारा 397(2) के तहत रोक के बावजूद, एक अंतरिम आदेश को रद्द कर सकता है।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय

अवधारितः 1.1 एक कंपनी का एक अलग कानूनी व्यक्तित्व होता है। इसलिए यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि अपीलकर्ता कंपनी का स्वामित्व और नियंत्रण स्वयं विक्रेताओं के पास है, दूसरे प्रतिवादी और विक्रेताओं के बीच सिविल मुकदमे में जारी कोई भी आदेश अपीलकर्ता कंपनी पर बाध्यकारी नहीं होगा क्योंकि वह मुकदमे में पक्षकार नहीं है। यह सच है कि कुछ मामलों में न्यायालय 'निगम आवरण' को तोड़ सकता है और इकाई के पीछे की वास्तविकता को देख सकता है यदि यह पाया जाता है कि निगमन के उपकरण का उपयोग कुछ अवैधता या धोखाधड़ी को अंजाम देने के लिए किया गया है। हालाँकि वर्तमान मामले में ऐसी कोई भी अवैधता या धोखाधड़ी सामने नहीं आई है और न ही साबित हुई है। किसी भी मामले में, किसी संपत्ति के संबंध में दीवानी मुकदमा लंबित होने पर, उसी संपत्ति के संबंध में कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 630 के तहत शिकायत पर रोक नहीं लगाएगी, भले ही वह वह उन्हीं पक्षों के बीच हो, अगर कोई विवाद नहीं है या संपत्ति पर कंपनी के अधिकार के संबंध में कोई वास्तविक विवाद नहीं है। केवल यह तथ्य कि आरोपी कर्मचारी ने कंपनी के कब्जे के दावे को खारिज कर दिया है, विवाद को वास्तविक नहीं बना देगा। [पैरा 8] [418–ए–डी]

1.2 वर्तमान मामले में, कोई प्रामाणिक विवाद नहीं है, क्योंकि विवादित संपत्ति पर दूसरे प्रतिवादी का पूरा दावा एक मौखिक समझौते/'समझ' पर आधारित है, जिसकी शर्तों के बारे में कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। जबकि अपीलकर्ता कंपनी को कम से कम दिनांक 26.4.2008 के बिक्री समझौते के खंड 6 द्वारा संपत्ति के प्रतीकात्मक कब्जे में रखा गया है, जिस पर दूसरे प्रतिवादी ने विवाद नहीं किया है। [पैरा 8] [418–ई–एफ]

1.3 वर्तमान शिकायत जैसे मामले में, जहां संपत्ति की खरीद के लिए आरोपी कर्मचारी के पक्ष में केवल एक मौखिक समझौता था, लेकिन सिविल कोर्ट ने यथास्थिति का निर्देश देते हुए एक अस्थायी निषेधाज्ञा जारी की है, फिर भी अभियुक्त को विवादित संपत्ति पर कानूनी रूप से कब्ज़ा करने का अधिकार तभी प्राप्त होगा जब वह सिविल मुकदमे में अपने पक्ष में डिक्री प्राप्त करने में सफल हो। विवादित संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देने वाले सिविल कोर्ट द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा जारी करने मात्र से विवाद प्रमाणित नहीं हो जाता है या 1956 अधिनियम की धारा 630 के तहत आरोपी कर्मचारी से विवादित संपत्ति वापस पाने के कंपनी के अधिकार पर रोक नहीं लग जाती है। अधिक से अधिक, ऐसा निषेधाज्ञा कंपनी को सिविल मुकदमे के निपटान तक तीसरे पक्ष के पक्ष में कोई भी अधिकार बनाने से रोक देगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि सिविल मुकदमे में कार्रवाई का कारण इस सवाल से बिल्कुल अलग है कि क्या कर्मचारी कंपनी की संपत्ति को गलत तरीके से रोक रहा है, जो वर्तमान आपराधिक कार्यवाही में विचार के लिए मुद्दा है। यदि प्रथम दृष्टया विचारण न्यायालय को लगता है कि कंपनी के पास संपत्ति रखने का अधिकार है, तो सिविल कोर्ट द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा जारी करने

का इस्तेमाल कंपनी के कब्जे के वैध अधिकार को खत्म करने के लिए नहीं किया जा सकता है। यह विर्निदिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 41 के खंड (बी) और (डी) से भी स्पष्ट है। [पैरा 8] [418–जी–एच; 419–ए–सी]

1.4 जहां मजिस्ट्रेट ने पाया कि प्रथम दृष्टया कंपनी के पास विवादित संपत्ति पर कब्जा करने का अधिकार है, वह धारा 630(1) के तहत मुकदमे के समापन से पहले धारा 630(2) के तहत अंतरिम राहत दे सकता है। धारा 630 की उदार व्याख्या की जानी चाहिए ताकि कंपनी की संपत्ति की शीघ्र वसूली की सुविधा मिल सके। धारा 630 में अभिव्यक्ति 'अधिकारी या कर्मचारी', हालांकि यह मुख्य रूप से मौजूदा अधिकारियों और कर्मचारियों पर लागू होती है, इसमें पिछले अधिकारियों और कर्मचारियों को भी शामिल किया जा सकता है।

इसलिए, यह देखते हुए कि धारा 630 का प्राथमिक उद्देश्य कंपनियों को गलत तरीके से रोकी गई संपत्ति की बहाली के लिए एक त्वरित तंत्र प्रदान करना है, प्रावधान का अर्थ यथासंभव पीड़ित कंपनी के पक्ष में उपाय की सुविधा प्रदान करने और आरोपी द्वारा अनुचित रूप से लंबी अवधि के लिए संपत्ति के गलत प्रतिधारण को रोकने के लिए समझा जाना चाहिए। [पैरा 9] [419–जी–एच; 420–ए, डी–ई; 421–सी]

1.5 धारा 630(2) में कोई शर्त नहीं है कि गलत तरीके से रोकी गई संपत्ति के वितरण का आदेश धारा 630(1) के तहत आरोपी को दोषी ठहराए जाने के बाद ही किया जाना चाहिए। बल्कि, यह कहता है कि अपराध की 'सुनवाई' करने वाली अदालत ऐसी संपत्ति की डिलीवरी का निर्देश दे सकती है, जो इंगित करता है कि निचली न्यायालय द्वारा किसी भी स्तर पर ऐसा आदेश पारित किया जा सकता है। इसलिए वर्तमान मामले में, निचली अदालतों ने मूल आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान धारा 630(2) ए के तहत अपीलकर्ता कंपनी के आवेदन को अनुमति देने में कोई त्रुटि नहीं की है। [पैरा 9] [421–डी–एफ]

1.6 उच्च न्यायालय ने धारा 630 की कड़ाई से व्याख्या करके प्रावधान की भावना के विरुद्ध काम किया है, जिसका अर्थ है कि अपीलकर्ता कंपनी के पास विवादित संपत्ति के स्वामित्व के रूप में अधिकार होना चाहिए और आरोपी को उसकी सेवा के अनुलाभ के रूप में फ़्लैट का कब्जा होना चाहिए था । धारा 630 में कहीं भी यह आवश्यक नहीं है कि कंपनी के पास संपत्ति का स्वामित्व होना चाहिए। जोर इस बात पर है कि क्या आरोपी ने संपत्ति पर गलत तरीके से कब्जा कर लिया है जो कंपनी के विशेष कब्जे के वैध अधिकार को खत्म कर देता है, भले ही संपत्ति कंपनी की नहीं बल्कि तीसरे पक्ष के मकान मालिक या लाइसेंसकर्ता की हो। अनुभाग के लाभकारी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 'कंपनी की संपत्ति' शब्द का व्यापक रूप से अर्थ लगाया जाना चाहिए। [पैरा 10] [421–जी–एच; 422–ए–बी]

1.7 दूसरे प्रतिवादी ने स्वीकार किया है कि मूल मालिक की मृत्यु के बाद, विवादित संपत्ति विक्रेताओं को विरासत में मिली थी, जिन्होंने बाद में दिनांक 26.4.2008 के समझौते द्वारा अपीलकर्ता कंपनी को कब्ज़ा हस्तांतरित कर दिया था। दूसरे प्रतिवादी ने संपत्ति का स्वामित्व विलेख भी अपीलकर्ता कंपनी को सौंप दिया। इसलिए, जब तक दूसरा प्रतिवादी सिविल मुकदमे में यह साबित नहीं कर देता कि

विक्रेताओं को उसे संपत्ति बेचनी थी, तब तक कंपनी के पास ही वर्तमान में संपत्ति पर कब्जा रखने का विशेष अधिकार है। [पैरा 10] [422–सी]

1.8 दूसरा प्रतिवादी इस तथ्य का खंडन करने में विफल रहा है कि 26.4.2008 तक यह वह कंपनी है जिसने संपत्ति पर कब्जा करने का विशेष अधिकार हासिल कर लिया है और कंपनी ने 1.5.2008 से केवल कंपनी के निदेशक के रूप में उन्हें कब्ज़ा सौंप दिया। दिनांक 26.4.2008 से पहले जो भी स्थिति रही हो, उस तारीख को और उसके बाद कंपनी, विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने की हकदार बन गई। [पैरा 10] [422–एफ]

1.9 दूसरे प्रतिवादी के इस तर्क में कोई सार नहीं है कि उसकी साली ने विवादित संपत्ति के मालिकाना हक के दस्तावेज देने में उसे इस आधार पर गुमराह किया था कि अभिलेखों को अद्यतन करने के लिए उनकी आवश्यकता थी। दूसरा प्रतिवादी, कंपनी में एक पदाधिकारी होने के नाते, रिकॉर्ड को स्वयं अद्यतन करवा सकता था या इसे विक्रेताओं तक पहुंचा सकता था, यदि उनके आग्रह पर उसने दस्तावेज़ सौंपे थे। हालाँकि दिनांक 9.6.2008 के पत्र से पता चलता है कि शीर्षक दस्तावेज़ अपीलकर्ता कंपनी के एक प्रतिनिधि को सौंपे गए थे। इससे पता चलता है कि दूसरे प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि 26.4.2008 दिनांकित समझौते के माध्यम से कंपनी को स्वामित्व हस्तांतरित किया जाना था। [पैरा 10] [422–जी–एच; 423–ए]

1.10 धारा 630 में कहीं भी यह निर्धारित नहीं किया गया है कि संपत्ति कंपनी द्वारा आरोपी को सेवा के शर्त के रूप में आवंटित की जानी चाहिए थी। कब्ज़ा किस उद्देश्य से और किस समय दिया गया, यह अप्रासंगिक है। पर्याप्त बात यह है कि आरोपी को कंपनी के एक अधिकारी/कर्मचारी के रूप में संपत्ति पर कब्ज़ा कर लिया गया था और उसके रोजगार की समाप्ति के बाद भी उसने बिना किसी स्वतंत्र अधिकार, शीर्षक या हित के ऐसी संपत्ति को रोकना जारी रखा। ऐसे स्वतंत्र अधिकार को स्थापित करने के लिए केवल मौखिक सहमति या समझ पर्याप्त नहीं होगी। [पैरा 10] [423–बी–डी]

दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड, (1996) 4 एससीसी 622: [1996] 2 सप्ल एससीआर 295; दामोदर दास जैन बनाम कृष्ण चरण चक्रवर्ती (1989) 4 एससीसी 531; अतुल माथुर बनाम अतुल कालरा (1989) 4 एससीसी 514: [1989] 3 एससीआर 750; बलदेव कृष्ण साही बनाम शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (1987) 4 एससीसी 361: [1988] 1 एससीआर 168 – पर भरोसा किया गया।

टाटा टी लिमिटेड बनाम फजलुर रहमान (2001) 104 कॉम्प कैस 718 कैल; जॉली दुर्गा प्रसाद बनाम गुडरिक्स ग्रुप लिमिटेड (1999) 97 कॉम्प कैस 698 (कैल); एस. पलानीस्वामी बनाम श्री जनार्दन मिल्स लिमिटेड (1993) 76 कॉम केस 323 (मद्रास); कन्नकांडी गोपाल कृष्ण नायर बनाम प्रकाश चंदर जुनेजा (1994) 81 कॉम्प कैस 104; पीवी जॉर्ज बनाम जेम्स इंजीनियरिंग कंपनी (पी) लिमिटेड (1990) 2 कॉम्प एलजे 62 (मद्रास)); मेटल बॉक्स इंडिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 2 डीएचएन 423 – संदर्भित।

2.1 द.प्र.सं. की धारा 397(2) में प्रावधान है कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग किसी अपील, जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के संबंध में नहीं किया जाएगा। जबकि सीआरपीसी की धारा 482 में प्रावधान है कि सीआरपीसी की कोई भी बात प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित नहीं करेगी। इसलिए उच्च न्यायालय धारा 397(2) के तहत रोक के बावजूद, किसी अंतर्वर्ती आदेश को रद्द करने के लिए धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। हालाँकि यह स्थापित कानून है कि ऐसा केवल असाधारण मामलों में ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यह तब होता है जब कोई आपराधिक कार्यवाही कार्यवाही अवैध रूप से, परेशान करने वाली या अधिकार क्षेत्र के बिना शुरू की गई हो। [पैरा 11] [423–डी–एफ]

मधु लिमये बनाम। महाराष्ट्र राज्य (1977) 4 एससीसी 551 [1978] 1 एससीआर 749–संदर्भित किया गया

2.2. वर्तमान मामले में, धारा 630(2) के तहत मजिस्ट्रेट का आदेश तथ्यों के प्रथम दृष्टया मूल्यांकन के आधार पर एक अंतरिम राहत था और धारा 630(1) के तहत चल रहे मुकदमे पर निर्णायक रूप से निर्णय नहीं करता था। यदि मजिस्ट्रेट को पता चलता है कि अपीलकर्ता कंपनी यह साबित करने में असमर्थ रही है कि दूसरा प्रतिवादी गलत तरीके से संपत्ति का कब्जा रोक रहा था, तो ऐसी अंतरिम राहत रद्द हो जाएगी। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के लिए निचली अदालत के अंतरिम आदेश में अवैधता या क्षेत्राधिकार की कमी का कोई असाधारण मामला नहीं था। [पैरा 11] [423–जी–एच; 424–ए]

न्यायदृष्टांत संदर्भित

[1989] 3 SCR 750	relied on	Para 4
(2001) 104 Comp Cas 718 Cal.	referred to	Para 4
[1988] 1 SCR 168	referred to	Para 4
(1997) 2 CHN 423	referred to	Para 4
[1996] 2 Suppl. SCR 295	relied on	Para 8
(1989) 4 SCC 531	relied on	Para 8
(1999) 97 Comp Cas 698 (Cal)	referred to	Para 8
(1993) 76 Com Cases 323 (Mad)	referred to	Para 8
(1994) 81 Comp Cas 104	referred to	Para 9
(1990) 2 Comp LJ 62 (Mad))	referred to	Para 10
[1978] 1 SCR 749	referred to	Para 11

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय : 2019 की आपराधिक अपील संख्या 1571।

2013 की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका सीआरआर संख्या 1004 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 24.08.2017 से उत्पन्न

श्याम दीवान, सिद्धार्थ भटनागर, वरिष्ठ अधिवक्ता, एस. चक्रवर्ती, सुश्री कंचन यादव, सुश्री हर्षिता वर्मा ((मेसर्स के लिए) कानूनी विकल्प), अधिवक्ता अपीलकर्ता के लिए

एस.बी. उपाध्याय, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुहान मुखर्जी, सुश्री आस्था शर्मा, अमित वर्मा, अभिषेक मनचंदा, सुश्री काजल दलाल, प्रस्तुत दलवी, नवीन कुमार (एम/एस. पीएलआर चैंबर्स एंड कंपनी के लिए), राणा एस. विश्वास, सुनील कुमार शर्मा, निशांत कुमार, सुश्री शर्मिला उपाध्याय, अधिवक्ता उत्तरदाताओं के लिए

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

मोहन एम. शांतनागौदर, जे.

1. अनुमति प्रदान की गई ।

2. विशेष अनुमति द्वारा यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 24.8.2017 के फैसले से उत्पन्न हुई है, जिसमें न्यायिक मजिस्ट्रेट, अलीपुर के आदेश दिनांक 6.9.2010 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अलीपुर के दिनांक 21.12.2012 के आदेश के खिलाफ दूसरे प्रतिवादी की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका को अनुमति दी गई है।

3. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य इस प्रकार हैं:

अपीलकर्ता, कंपनी अधिनियम, 1956 (संक्षेप में '1956 अधिनियम') के अर्थ के तहत एक 'मौजूदा' कंपनी है, जिसने श्रीकुंज, 13, गुरुसदाय रोड, पुलिस स्टेशन–करया, कोलकाता–700019 के प्लॉट डी की तीसरी मंजिल पर स्थित एक फ्लैट (इसके बाद 'विवादित संपत्ति') की खरीद के लिए दिनांक 26.4.2008 में एक दिवंगत श्री अरुण कुमार बाजोरिया (इसके बाद 'विक्रेता') के कानूनी उत्तराधिकारियों के साथ को बिक्री के लिए समझौता किया था। समझौते की शर्तों के अनुसार, विक्रेता 2,02,26,000/– रुपये के संपूर्ण बिक्री मूल्य के भुगतान पर अपीलकर्ता के पक्ष में हस्तांतरण विलेख निष्पादित और पंजीकृत करेंगे। हालाँकि, अंतरिम में, समझौते के खंड 6 के तहत, अपीलकर्ता कंपनी को 84,275/– रुपये के मासिक किराए के भुगतान के अधीन संपत्ति पर कब्ज़ा कर लिया जाएगा। यह समझौता विवादित नहीं है ।

अपीलकर्ता का मामला यह है कि दूसरा प्रतिवादी/अभियुक्त श्री बाल बिनोद बाजोरिया 1988 से 2008 तक अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक थे। निदेशक के पद पर रहने के कारण उन्हें 1.5.2008 से विवादित संपत्ति का उपयोग करने और उस पर कब्ज़ा करने की अनुमति दी गई थी। दूसरे प्रतिवादी को

22.11.2008 को आयोजित अपीलकर्ता कंपनी की वार्षिक आम बैठक में निदेशक मंडल से रोटेशन के आधार पर सेवानिवृत्त होना था; हालाँकि उन्होंने खुद को पुनर्निर्वाचन के लिए पेश किया। बैठक में उपस्थित सदस्यों ने उनके खिलाफ मतदान किया और उसके बाद दूसरे प्रतिवादी अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक नहीं रहे। परिणामस्वरूप उसे विवादित संपत्ति कंपनी को लौटानी पड़ी; लेकिन वह ऐसा करने में विफल रहा।

अपीलकर्ता कंपनी ने 20.4.2009 को 2 प्रतिवादियों को विवादित संपत्ति को खाली करने और भौतिक कब्ज़ा देने के लिए कहा। जब उन्होंने इनकार कर दिया, तो अपीलकर्ता ने 30.4.2009 को दूसरे प्रतिवादी को एक पत्र भेजकर कब्जा देने का अनुरोध किया। जब दूसरा प्रतिवादी फिर भी अपीलकर्ता के अनुरोध का पालन करने में विफल रहा, तो 11.8.2009 को 1956 अधिनियम की धारा 630(1) के तहत उनके खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज की गई। इस शिकायत के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता कंपनी ने दूसरे प्रतिवादियों को विवादित संपत्ति से बेदखल करने के लिए 1956 अधिनियम की धारा 630(2) के तहत 29.4.2010 को एक आवेदन दाखिल किया।

धारा 630 इस प्रकार है:

"630. संपत्ति को गलत तरीके से रोकने के लिए जुर्माना.

(1) यदि किसी कंपनी का कोई अधिकारी या कर्मचारी–

(ए) किसी कंपनी की किसी भी संपत्ति पर गलत तरीके से कब्ज़ा प्राप्त कर लेता है; या

(बी) ऐसी किसी भी संपत्ति को अपने कब्जे में रखते हुए, उसे गलत तरीके से रोकता है या जानबूझकर इसे लेखों में व्यक्त या निर्देशित और इस अधिनियम द्वारा अधिकृत उद्देश्यों के अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग करता है;

वह कंपनी या उसके किसी लेनदार या अंशदाता की शिकायत पर जुर्माने से दंडनीय होगा जो एक हजार रुपये तक बढ़ सकता है।

(2) अपराध की सुनवाई करने वाला न्यायालय ऐसे अधिकारी या कर्मचारी को न्यायालय द्वारा गलत तरीके से प्राप्त की गई या गलत तरीके से रोकी गई या जानबूझकर गलत तरीके से उपयोग की गई, या चूक में, एक अवधि के लिए जिसे दो साल तक बढ़ाया जा सकता है के कारावास भुगतने की सजा देने या निर्धारित समय के भीतर, वापस करने का आदेश दे सकता है।"

अपीलकर्ता के आरोपों के विपरीत, दूसरे प्रतिवादी का तर्क है कि उसका मृतक श्री अरुण कुमार बाजोरिया, जो उसका चचेरा भाई था, के साथ एक आपसी समझ/मौखिक समझौता था, जिसके तहत मृतक ने विवादित संपत्ति पर निर्माण के लिए 9,10,170/– रुपये का भुगतान किया था। प्रतिवादी 2 और अरुण कुमार बाजोरिया के बीच यह सहमति हुई कि जब प्रतिवादी इतनी राशि का भुगतान करने की

स्थिति में होगा, तो खरीद मूल्य का भुगतान करने पर वह विवादित संपत्ति को प्रतिवादी 2 और उसके नामांकित व्यक्ति को हस्तांतरित कर देगा। दूसरे शब्दों में, दूसरे प्रतिवादी के अनुसार, उन्हें मृतक अरुण कुमार बाजोरिया के साथ अपनी मौखिक समझ के आधार पर विवादित संपत्ति खरीदने की अनुमति दी गई थी, जिस तारीख को उन्होंने अरुण कुमार बाजोरिया को बिक्री पर विचार किया था।

हालाँकि, अरुण कुमार बाजोरिया के निधन के बाद, दूसरे प्रतिवादी और अरुण कुमार बाजोरिया के परिवार के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए। इसलिए विक्रेता दोनों प्रतिवादियों और उनके पूर्ववर्ती–हित के बीच सहमति के अनुसार हस्तांतरण के एक विलेख को निष्पादित करने में विफल रहे, और उन्हें अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक पद से भी गलत तरीके से हटा दिया।

इसके बाद दूसरे प्रतिवादी ने अलीपुर में सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के समक्ष विक्रेताओं के खिलाफ मुकदमा संख्या 2126/2009 दायर किया, जिसमें अरुण कुमार बाजोरिया के साथ बिक्री के कथित मौखिक समझौते/समझ के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन और विक्रेताओं को उसके कब्जे में गड़बड़ी करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की प्रार्थना की गई। सिविल जज (सीनियर डिवीजन) ने दिनांक 6.7.2009 के आदेश द्वारा एक अस्थायी निषेधाज्ञा जारी की जिसमें पक्षों को विवादित संपत्ति के कब्जे के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया। यह मुक़दमा अभी भी निर्णयाधीन है।

4. अलीपुर के विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 6.9.2010 के आदेश द्वारा धारा 630(2) के तहत अपीलकर्ता के आवेदन को स्वीकार कर लिया। मजिस्ट्रेट ने अतुल माथुर बनाम अतुल कालरा, (1989) 4 एससीसी 514 में इस न्यायालय के फैसले और टाटा टी लिमिटेड बनाम फजलुर रहमान, (2001) 104 कॉम्प कैस 718 कैल में कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। यह अभिनिर्धारित करना कि किसी सिविल मुकदमे के लंबित रहने से धारा 630 के तहत विवादित संपत्ति के संबंध में आपराधिक शिकायत दर्ज करने पर रोक नहीं लगेगी, और धारा 630 (2) के तहत एक आवेदन को 1956 अधिनियम की धारा 630(1) के तहत शिकायत के अंतिम निपटारे से पहले भी अनुमति दी जा सकती है।

10. मजिस्ट्रेट ने आगे कहा कि बलदेव कृष्ण साही बनाम शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, (1987) 4 एससीसी 361 में इस न्यायालय के फैसले और मेटल बॉक्स इंडिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 2 सीएचएन 423, में कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए, धारा 630 में 'अधिकारी या कर्मचारी' शब्द में कंपनी के पूर्व अधिकारी शामिल होंगे जिन्होंने अपने रोजगार की समाप्ति के बाद गलत तरीके से कंपनी की संपत्ति पर कब्जा बरकरार रखा है। इसलिए मजिस्ट्रेट ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अभियुक्त/द्वितीय प्रत्यर्थी ने इस बात से इनकार नहीं किया था कि विवादित संपत्ति अपीलकर्ता कंपनी की थी और उसे कंपनी द्वारा उसके आवास के लिए फ्लैट का कब्जा दिया गया था, दूसरे प्रतिवादी को खाली करने और विवादित संपत्ति का कब्ज़ा अपीलकर्ता कंपनी को सौंपेंने का निर्देश दिया ।

अलीपुर के विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 21.12.2012 के आदेश द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 ('सीआर.पी.सी.') की धारा 399 के साथ पढ़ी गई धारा 397 के तहत दूसरे प्रतिवादी के पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया, और मजिस्ट्रेट के आदेश की पुष्टि करते हुए कहा कि चूंकि अपीलकर्ता कंपनी दूसरे प्रतिवादी और विक्रेताओं के बीच दीवानी मुकदमा संख्या 2126/2009 का पक्षकार नहीं थी, इसलिए मुकदमे की लंबितता उसके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी।

हालाँकि, उच्च न्यायालय ने विवादित फैसले में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दूसरे प्रतिवादी की याचिका को स्वीकार कर लिया और मजिस्ट्रेट और सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों को इस आधार पर रद्द कर दिया कि यह साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं था कि विवादित संपत्ति अपीलकर्ता कंपनी द्वारा दूसरे प्रतिवादी को निदेशक के रूप में उनकी सेवा के लिए अनुलाभ के रूप में, या तो निदेशक मंडल में उनके शामिल होने के समय, या 26.4.2008 को बिक्री के लिए समझौते के निष्पादन के बाद दी गई थी। बल्कि, दूसरे प्रतिवादी 1988 से कंपनी के निदेशक थे, और विवादित संपत्ति कम से कम 2001 से उनके कब्जे में थी, अपीलकर्ता कंपनी और विक्रेताओं द्वारा बिक्री के लिए एक समझौते में प्रवेश करने से बहुत पहले। इसलिए बलदेव कृष्ण साही (सुप्रा), मेटल बॉक्स इंडिया (सुप्रा) और टाटा टी लिमिटेड (सुप्रा) के फैसले उन फैसलों की तरह वर्तमान मामले पर लागू नहीं होंगे; कंपनी द्वारा आरोपी अधिकारियों/कर्मचारियों को उनकी सेवा के अनुलाभ के रूप में संपत्ति आवंटित की गई थी।

उच्च न्यायालय ने आगे कहा कि चूंकि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि दिनांक 26.4.2008 (उपरोक्त) के बिक्री समझौते के संबंध में कोई हस्तांतरण विलेख पंजीकृत किया गया था, और कंपनी ने समझौते के समय कोई प्रतिफल या अग्रिम किराया नहीं दिया था, यह नहीं कहा जा सकता कि कंपनी के पास विवादित संपत्ति पर कोई स्वामित्व था। अतः उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि निचली अदालत का यह निष्कर्ष कि कंपनी द्वारा विवादित संपत्ति दूसरे प्रतिवादी को दे दी गई थी, बिल्कुल गलत था, और 1956 अधिनियम की धारा 630(2) वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगी; और परिणामस्वरूप निचली अदालतों के आदेशों को रद्द कर दिया।

5. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री श्याम दीवान ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि उच्च न्यायालय का निष्कर्ष गलत था क्योंकि जहाँ तक यह पाया गया कि अपीलकर्ता कंपनी को विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने का दावा करने का कोई अधिकार नहीं था, केवल इसलिए कि कोई बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया गया था। दूसरे प्रतिवादी ने स्वयं अपने काउंटर में स्वीकार किया है कि उसने दिनांक 9.6.2008 के पत्र द्वारा विवादित संपत्ति के मूल स्वामित्व दस्तावेज अपीलकर्ता कंपनी को सौंप दिए थे।

15. इसके अलावा, अतुल माथुर (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने शिकायतकर्ता कंपनी को राहत दी थी, भले ही संपत्ति लीव–एंड–लाइसेंस के आधार पर ली गई थी। वर्तमान मामले में, दिनांक 26.4.2008 के बिक्री समझौते के खंड 6 ने अपीलकर्ता के पक्ष में एक मासिक किरायेदारी बनाई है; इसलिए

अपीलकर्ता को उस आधार पर संपत्ति पर कब्जे का अधिकार प्राप्त हो गया है। इस तर्क का समर्थन करने के लिए, उन्होंने एलबी झा एंड कंपनी चार्टर्ड अकाउंटेंट्स का दिनांक 16.1.2018 का एक प्रमाण पत्र रिकॉर्ड पर रखा, जिसमें दिखाया गया था कि अपीलकर्ता कंपनी ने 1.1.2009 से 31.12.2017 तक विवादित संपत्ति के संबंध में 91,01,700/– रुपये का किराया भुगतान किया है ; साथ ही टीडीएस (स्रोत पर कर कटौती) प्रमाण पत्र दिखाते हैं कि अपीलकर्ता कंपनी ने विक्रेताओं को भुगतान करते समय किराए की आय पर कर काटा था।

उन्होंने आगे तर्क दिया कि चूंकि अपीलकर्ता कंपनी 2 प्रतिवादियों और विक्रेताओं के बीच सिविल मुकदमे में पक्षकार नहीं थी, इसलिए सिविल मुकदमे में आदेश अपीलकर्ता कंपनी पर बाध्यकारी नहीं होगा; और यह आवश्यक नहीं था कि धारा 630 के तहत आरोपी अधिकारी/कर्मचारी के पास उसकी सेवा के अनुलाभ के रूप में विवादित संपत्ति होनी चाहिए। इसलिए उच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में गलती की है।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री एस बी उपाध्याय ने तर्क दिया कि शिकायत कुछ और नहीं बल्कि अपीलकर्ता कंपनी की एक योजना है, जो विवादित संपत्ति के कब्जे से उसे बेदखल करने के लिए दूसरे प्रतिवादी के अपने रिश्तेदारों से बनी है। कंपनी का स्वामित्व और नियंत्रण स्वयं विक्रेताओं द्वारा किया जाता है, और आपराधिक शिकायत कुछ और नहीं बल्कि विवादित संपत्ति से 2 प्रतिवादियों को बेदखल करने के लिए एक वैकल्पिक तंत्र है क्योंकि सिविल कोर्ट ने यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया था; प्रतिवादी को उसके रिश्तेदारों, यानी विक्रेताओं द्वारा गलत तरीके से विश्वास दिलाया गया था कि विवादित संपत्ति के स्वामित्व दस्तावेजों को रिकॉर्ड के अद्यतनीकरण के लिए भेजा जाना था, इसलिए उसने उन्हें विक्रेताओं की हिरासत में सौंप दिया था,और बाद में ही उन्हें पता चला कि दस्तावेज़ गलत तरीके से अपीलकर्ता कंपनी को सौंप दिए गए थे।

कि वह 1994 से विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा कर रहा है; और यहां तक कि अपीलकर्ता ने भी स्वीकार किया है कि कम से कम 2001 से उसका कब्जा है; जबकि अपीलकर्ता कंपनी ने 2008 में ही विक्रेताओं के साथ बिक्री के लिए एक समझौता किया था, वह भी एक अपंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से। नतीजतन, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता के पास विवादित संपत्ति का कोई स्वामित्व था, और कंपनी ने कंपनी के एक अधिकारी के रूप में प्रतिवादी को संपत्ति का कब्ज़ा दिया था। अतः धारा 630 वर्तमान मामले की ओर आकर्षित नहीं होती है।

7. इसलिए वर्तमान अपील में विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे उठते हैं:

पहला, क्या विवादित संपत्ति के संबंध में सिविल मुकदमा लंबित होने और अस्थायी निषेधाज्ञा जारी होने के बावजूद, 1956 अधिनियम की धारा 630(2) के तहत एक आवेदन कायम रखने योग्य था?

दूसरा, क्या धारा 630(1) के तहत शिकायत के अंतिम निपटान से पहले धारा 630(2) के तहत कोई आदेश दिया जा सकता है?

तीसरा, यदि पहले और दूसरे मुद्दे का उत्तर सकारात्मक है, तो क्या कंपनी दूसरे प्रतिवादी को संपत्ति से बेदखल करने के लिए प्रार्थना करने की हकदार है?

चौथा, क्या यह आवश्यक है कि दूसरे प्रतिवादी को उसकी सेवा के अनुलाभ के रूप में विवादित संपत्ति का कब्ज़ा होना चाहिए?

अंततः, क्या उपरोक्त मुद्दों के उत्तरों के आलोक में, उच्च न्यायालय द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करना उचित था?

8. पहले मुद्दे के संबंध में, यह निर्विवाद है कि किसी कंपनी का एक अलग कानूनी व्यक्तित्व होता है। इसलिए भले ही हम उत्तरदाताओं के इस तर्क को स्वीकार कर लें कि अपीलकर्ता कंपनी का स्वामित्व और नियंत्रण स्वयं विक्रेताओं के पास है, दूसरे प्रतिवादी और विक्रेताओं के बीच सिविल मुकदमे में जारी कोई भी आदेश अपीलकर्ता कंपनी पर बाध्यकारी नहीं होगा क्योंकि वह मुकदमे में पक्षकार नहीं है। यह सच है कि कुछ मामलों में न्यायालय 'कॉर्पोरेट पर्दा' को भेद सकता है और इसके पीछे की वास्तविकता को देख सकता है यदि यह पाया जाता है कि निगमन के उपकरण का उपयोग कुछ अवैधता या धोखाधड़ी को अंजाम देने के लिए किया गया है (देखें दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम स्किपर) कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड, (1996) 4 एससीसी 622)। हालाँकि वर्तमान मामले में ऐसी किसी भी अवैधता या धोखाधड़ी अभिवचनित नही है और न पुष्टि नहीं की गई है।

किसी भी मामले में, दामोदर दास जैन बनाम कृष्ण चरण चक्रवर्ती, (1989) 4 एससीसी 531, और अतुल माथुर (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा इसका निपटारा करते हुये यह तय किया गया है कि किसी संपत्ति के संबंध में सिविल मुकदमे की पेंडेंसी, एक ही संपत्ति के संबंध में धारा 630 के तहत शिकायत पर रोक नहीं लगाई जाएगी, भले ही वह एक ही पक्षों के बीच हो, अगर संपत्ति पर कंपनी के अधिकार के संबंध में कोई विवाद या कोई वास्तविक विवाद नहीं है। केवल यह तथ्य कि आरोपी कर्मचारी ने कंपनी के कब्जे के दावे को खारिज कर दिया है, विवाद को प्रामाणिक नहीं बनाएगा।

वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि कोई वास्तविक विवाद नहीं है क्योंकि विवादित संपत्ति पर प्रतिवादी का पूरा दावा एक मौखिक समझौते/'समझ' पर आधारित है, जिसकी शर्तों के बारे में कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। जबकि अपीलकर्ता कंपनी को कम से कम 26.4.2008 के बिक्री समझौते के खंड 6 द्वारा संपत्ति के प्रतीकात्मक कब्जे में रखा गया है, जिस पर दूसरे प्रतिवादी ने विवाद नहीं किया है।

फिर सवाल यह है कि क्या अतुल माथुर (सुप्रा) में अनुपात 1956 अधिनियम की धारा 630 के तहत सह–व्यापक आपराधिक कार्यवाही की अनुमति देता है, भले ही सिविल कोर्ट ने संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया हो। हमारी सुविचारित राय है कि वर्तमान शिकायत जैसे मामले में, जहां संपत्ति की खरीद के लिए आरोपी कर्मचारी के पक्ष में केवल मौखिक समझौता हुआ था, लेकिन सिविल कोर्ट ने यथास्थिति का निर्देश देते हुए एक अस्थायी निषेधाज्ञा जारी की है, फिर भी

अभियुक्त को विवादित संपत्ति पर कानूनी रूप से कब्ज़ा करने का अधिकार तभी प्राप्त होगा जब वह सिविल मुकदमे में अपने पक्ष में डिक्री प्राप्त करने में सफल हो।

विवादित संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देने वाले सिविल कोर्ट द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा जारी करने मात्र से विवाद प्रमाणिक नहीं हो जाता है या 1956 अधिनियम की धारा 630 के तहत आरोपी कर्मचारी से विवादित संपत्ति वापस पाने के कंपनी के अधिकार पर रोक नहीं लग जाती है। अधिक से अधिक, ऐसा निषेधाज्ञा कंपनी को सिविल मुकदमे के निपटान तक तीसरे पक्ष के पक्ष में कोई भी अधिकार बनाने से रोक देगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि सिविल मुकदमे में कार्रवाई का कारण इस सवाल से बिल्कुल अलग है कि क्या कर्मचारी कंपनी की संपत्ति को गलत तरीके से रोक रहा है, जो वर्तमान आपराधिक कार्यवाही में विचार के लिए मुद्दा है। यदि प्रथम दृष्टया ट्रायल कोर्ट को लगता है कि कंपनी के पास संपत्ति रखने का अधिकार है, तो सिविल कोर्ट द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा जारी करने का इस्तेमाल कंपनी के कब्जे के वैध अधिकार को खत्म करने के लिए नहीं किया जा सकता है। यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 41 के निम्नलिखित प्रासंगिक खंडों में भी परिलक्षित होता है।

> "41. निषेधाज्ञा जब अस्वीकार की जावेगी —निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती—
>
> ... (बी) किसी भी व्यक्ति को उस अदालत में कोई कार्यवाही शुरू करने या मुकदमा चलाने से रोकने के लिए जो उसके अधीनस्थ नहीं है जिससे निषेधाज्ञा की मांग की जाती है;...
>
> (डी) किसी भी व्यक्ति को आपराधिक मामले में कोई कार्यवाही शुरू करने या मुकदमा चलाने से रोकना... "

(देखें जॉली दुर्गा प्रसाद बनाम गुडरिक्स ग्रुप लिमिटेड, (1999) 97 कॉम्प केस 698 (कलकत्ता); एस. पलानीस्वामी और 3 अन्य बनाम श्री जनार्दन मिल्स लिमिटेड, (1993) 76 कॉम केस 323 (मद्रास) .)

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अतुल माथुर (सुप्रा) में निर्धारित सिद्धांत धारा 630 के तहत मामलों पर भी लागू होगा जहां एक सिविल कोर्ट ने कोई वास्तविक विवाद नहीं होने के बावजूद विवादित संपत्ति के संबंध में अस्थायी निषेधाज्ञा एक आदेश जारी किया है । ऐसे मामले में, सिविल मुकदमे की लंबितता और उसमें दी गई कोई भी अंतरिम राहत धारा 630 के तहत आपराधिक मुकदमा चलाने पर रोक नहीं लगाएगी।

9. इसी प्रकार, दूसरे मुद्दे के संबंध में, हमारी सुविचारित राय है कि जहां मजिस्ट्रेट ने पाया है कि प्रथम दृष्टया कंपनी के पास विवादित संपत्ति पर कब्जा करने का अधिकार है, तो वह धारा 630(2) के तहत धारा 630(1) के तहत मुकदमे के समापन तक के पहले अंतरिम राहत दे सकता है। न्यायालयों ने बार–बार देखा है कि धारा 630 की उदार व्याख्या की जानी चाहिए ताकि कंपनी की संपत्ति की शीघ्र

वसूली की सुविधा मिल सके। बलदेव कृष्ण साही (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियाँ इस संबंध में उपयोगी हैं:

> "7. धारा 630 में निहित लाभकारी प्रावधान निस्संदेह दंडात्मक है, कंपनी की संपत्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए एक सारांश प्रक्रिया प्रदान करने के उद्देश्य से विधायिका द्वारा जानबूझकर अधिनियमित किया गया है (ए) जहां किसी कंपनी का कोई अधिकारी या कर्मचारी गलत तरीके से कंपनी की संपत्ति का कब्जा प्राप्त करता है, या (बी) जहां उसके रोजगार के दौरान ऐसी किसी संपत्ति पर कब्जा कर लिया गया हो, उसके नौकरी की समाप्ति के बाद गलत तरीके से उस पर कब्जा रोक दिया जाता है। यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह कानून के उद्देश्य और उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए प्रावधान पर एक व्यापक और उदार निर्माण करे जो शरारत को दबाएगा और उपचार को आगे बढ़ाएगा।
>
> (जोर दिया गया)

इसलिए बलदेव कृष्ण साही मामले में इस न्यायालय ने माना कि धारा 630 में 'अधिकारी या कर्मचारी' अभिव्यक्ति, हालांकि यह मुख्य रूप से मौजूदा अधिकारियों और कर्मचारियों पर लागू होती है, इसमें पिछले अधिकारियों और कर्मचारियों को भी शामिल किया जा सकता है। हम कन्ननकांडी गोपाल कृष्ण नायर बनाम प्रकाश चंदर जुनेजा, (1994) 81 कॉम्प कैस 104 में बॉम्बे उच्च न्यायालय की निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियों का भी उल्लेख कर सकते हैं:

> "4. अदालतें कंपनी अधिनियम की धारा 630 के तहत कंपनियों द्वारा शुरू किए गए मुकदमों से भर गई हैं और यह प्रदर्शित किया गया है कि कानून के इस प्रावधान को कर्मचारियों और पूर्व कर्मचारियों द्वारा लगभग नपुंसक बना दिया गया है, जो दशकों से मुकदमेबाजी करके कंपनी की संपत्ति पर कब्जा कर रहे हैं। इस लंबी प्रक्रिया के अंत में, यदि आरोपी हार जाता है, तो कंपनी से अपेक्षा की जाती है कि यदि परिसर बहाल हो जाता है तो वह खुद को भाग्यशाली समझेगी और अपराध, यदि कोई हो, को आम बोलचाल की अभिव्यक्ति का उपयोग करते हुए, "माफ कर दिया गया और भूल गया" माना जाएगा। "। एक और चाल जो इन मामलों में सफलतापूर्वक अपनाई गई है, वह है गरीब मकान मालिक की हताशा का फायदा उठाना जो, इन कानूनी झड़पों के बीच, वास्तव में महसूस करता है कि कब्जे वाली पार्टी को बेचकर खराब सौदेबाजी का सर्वोत्तम लाभ उठाना बेहतर है। आरोपी, जिसने एक ओर, कंपनी अधिनियम की धारा 630 के संबंध में कानून को विफल कर दिया है, उसके बाद तर्क देता है कि उसे अपने फ़्लैट पर कब्जा बहाल करने का आदेश नहीं दिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, ऐसी कुटिल प्रक्रिया के माध्यम से, आरोपी को अपनी गलती का फायदा उठाने की अनुमति दी जाती है जो कि आपराधिक न्यायशास्त्र के स्वीकृत सिद्धांतों के लिए अभिशाप है। यदि इस तरह के जिम्नास्टिक की अनुमति दी जाती है, तो इसका प्रभाव कानून के शासन को खत्म करने पर पड़ेगा और अदालतों को, कुछ स्पष्ट सोच के साथ, ऐसी शरारत की स्थिति में बकवास न करने की नीति अपनानी होगी।

(जोर दिया गया)

इसलिए, यह देखते हुए कि धारा 630 का प्राथमिक उद्देश्य कंपनियों को गलत तरीके से रोकी गई संपत्ति की बहाली के लिए एक त्वरित तंत्र प्रदान करना है, हम पाते हैं कि प्रावधान को पीड़ित कंपनी के पक्ष में एक उपाय की सुविधा के लिए यथासंभव समझा जाना चाहिए और अभियुक्त द्वारा अनुचित रूप से लंबी अवधि के लिए संपत्ति को गलत गलत प्रतिधारण को रोकने के लिए किया जाना चाहिए।

30. धारा 630(2) में कोई शर्त नहीं है कि गलत तरीके से रोकी गई संपत्ति की डिलीवरी का आदेश धारा 630(1) के तहत आरोपी को दोषी ठहराए जाने के बाद ही किया जाना चाहिए। बल्कि, यह कहता है कि अपराध की 'सुनवाई' करने वाली अदालत ऐसी संपत्ति की डिलीवरी का निर्देश दे सकती है, जो इंगित करता है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा किसी भी स्तर पर ऐसा आदेश पारित किया जा सकता है। बलदेव कृष्ण साही (सुप्रा) की इस अदालत ने यह पाते हुए कि प्रथम दृष्टया धारा 630(1) के तहत मामला बनता है, याचिकाकर्ता को धारा 630(1) के तहत मूल शिकायत के लंबित रहने के दौरान विवादित परिसर को खाली करने का निर्देश दिया। इसलिए वर्तमान मामले में, निचली अदालतों ने मूल आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान धारा 630(2) के तहत अपीलकर्ता कंपनी के आवेदन को अनुमति देने में कोई त्रुटि नहीं की है।

10. तीसरे और चौथे मुद्दे के संबंध में, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय, प्रावधान की भावना के विरूद्ध गया है, जैसा कि बलदेव कृष्ण साही (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा धारा 630 की कड़ाई से व्याख्या करते हुए कहा गया है कि अपीलकर्ता कंपनी के पास विवादित संपत्ति के स्वामित्व के रूप में मालिकाना हक होना चाहिए और आरोपी को उसकी सेवा के अनुलाभ के रूप में फ्लैट का कब्जा होना चाहिए।

धारा 630 में कहीं भी यह आवश्यक नहीं है कि कंपनी के पास संपत्ति का स्वामित्व होना चाहिए। जोर इस बात पर है कि क्या आरोपी ने संपत्ति पर गलत तरीके से कब्जा कर लिया है जो कंपनी के विशेष कब्जे के वैध अधिकार को खत्म कर देता है, भले ही संपत्ति कंपनी की नहीं बल्कि किसी तीसरे पक्ष के मकान मालिक या लाइसेंसकर्ता की हो, जैसा कि अतुल माथुर (सुप्रा) में हुआ था। 'कंपनी की संपत्ति' शब्द को अनुभाग के लाभकारी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए (कन्नकांडी गोपाल कृष्ण नायर (सुप्रा) देखें); पीवी जॉर्ज बनाम जयम्स इंजीनियरिंग कंपनी (पी) लिमिटेड, (1990) 2 कॉम्प एलजे 62 (मद्रास))।

दूसरे प्रतिवादी ने स्वीकार किया है कि अरुण कुमार बाजोरिया की मृत्यु के बाद, विवादित संपत्ति विक्रेताओं को विरासत में मिली थी, जिन्होंने बाद में दिनांक 26.4.2008 के समझौते द्वारा अपीलकर्ता कंपनी को कब्ज़ा हस्तांतरित कर दिया था। दूसरे प्रतिवादी ने अपीलकर्ता कंपनी को संपत्ति का स्वामित्व विलेख भी सौंप दिया। इसलिए, जब तक दूसरा प्रतिवादी सिविल मुकदमे में यह साबित

नहीं कर देता कि विक्रेताओं को उसे संपत्ति बेचनी थी, तब तक कंपनी के पास ही वर्तमान में संपत्ति रखने का विशेष अधिकार है।

इसके अलावा, यह सच है कि धारा 630 के दायरे में आने वाले अधिकांश मामलों में, यह हुआ है कि कंपनी के पास मौजूद संपत्ति किसी कर्मचारी को पहली बार में ही उसकी सेवा के पैमाने के रूप में आवासीय आवास आदि के लिए आवंटित की गई थी। वर्तमान मामले में, दूसरा प्रतिवादी 1988 से कंपनी का निदेशक रहा है, और 1994 से उसके और उसके रिश्तेदार, मृतक अरुण कुमार बाजोरिया के बीच कथित समझौते के अनुसार विवादित संपत्ति पर अनुमेय कब्जे का दावा करता है हालाँकि, कंपनी ने विवादित संपत्ति 2008 में ही हासिल कर ली थी। जैसा भी हो, दूसरा प्रतिवादी इस तथ्य का खंडन करने में विफल रहा है कि 26.4.2008 तक यह वह कंपनी है जिसने संपत्ति पर कब्जा करने का विशेष अधिकार हासिल कर लिया है और कंपनी ने 1.5.2008 से केवल कंपनी के निदेशक के रूप में उन्हें कब्ज़ा सौंप दिया। 26.4.2008 से पहले जो भी स्थिति रही हो, उस तारीख को और उसके बाद कंपनी विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा वापस पाने की हकदार हो गई।

हमें दूसरे प्रतिवादी के इस तर्क में कोई दम नहीं मिला कि उसकी साली ने विवादित संपत्ति के मालिकाना हक के दस्तावेज देने में उसे इस आधार पर गुमराह किया था कि अभिलेखों को अद्यतन करने के लिए उनकी आवश्यकता थी। दूसरा प्रतिवादी, कंपनी में एक पदाधिकारी होने के नाते, रिकॉर्ड को स्वयं अद्यतन करवा सकता था या इसे विक्रेताओं तक पहुंचा सकता था, यदि उनके आग्रह पर उसने दस्तावेज़ सौंपे थे। हालाँकि दिनांक 9.6.2008 के पत्र से पता चलता है कि शीर्षक दस्तावेज़ अपीलकर्ता कंपनी के एक प्रतिनिधि को सौंपे गए थे। इससे पता चलता है कि दूसरे प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि दिनांक 26.4.2008 के समझौते के तहत स्वामित्व कंपनी को हस्तांतरित किया जाना था।

धारा 630 में कहीं भी यह निर्धारित नहीं किया गया है कि संपत्ति कंपनी द्वारा आरोपी को सेवा के अनुलाभ के रूप में आवंटित की जानी चाहिए थी। ऐसे कई उद्देश्य हो सकते हैं जिनके लिए अभियुक्त को रोजगार के दौरान कंपनी की संपत्ति पर वैध कब्ज़ा दिया जा सकता है, उदाहरण के लिए, संपत्ति की सुरक्षित अभिरक्षा या उसके रखरखाव के लिए। कब्ज़ा किस उद्देश्य से और किस समय दिया गया, यह अप्रासंगिक है। पर्याप्त बात यह है कि आरोपी को कंपनी के एक अधिकारी/कर्मचारी के रूप में संपत्ति पर कब्ज़ा कर लिया गया था और उसके रोजगार की समाप्ति के बाद भी उसने बिना किसी स्वतंत्र अधिकार, शीर्षक या हित के ऐसी संपत्ति को रोकना जारी रखा। जैसा कि हमने चर्चा में पाया है, केवल मौखिक सहमति या समझ ऐसे स्वतंत्र अधिकार को स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी।

11. अंतिम मुद्दे पर आते हुए, सीआरपीसी की धारा 397(2) में प्रावधान है कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग किसी अपील, जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के संबंध में नहीं किया जाएगा। जबकि सीआरपीसी की धारा 482 में प्रावधान है कि सीआरपीसी की कोई भी बात प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित नहीं करेगी। इसलिए उच्च न्यायालय धारा 397(2) के तहत रोक के बावजूद, किसी अंतर्वर्ती आदेश को रद्द करने के लिए धारा 482 के तहत

अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। हालाँकि यह स्थापित कानून है कि ऐसा केवल असाधारण मामलों में ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यह वह जगह है जहाँ एक आपराधिक कार्यवाही अवैध रूप से, परेशान करने वाली या अधिकार क्षेत्र के बिना शुरू की गई है (देखें मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977) 4 एससीसी 551)।

वर्तमान मामले में, धारा 630(2) के तहत मजिस्ट्रेट का आदेश तथ्यों के प्रथम दृष्टया मूल्यांकन के आधार पर एक अंतरिम राहत था और धारा 630(1) के तहत चल रहे मुकदमे का निर्णायक रूप से निर्णय नहीं करता था। यदि मजिस्ट्रेट को पता चलता है कि अपीलकर्ता कंपनी यह साबित करने में असमर्थ रही है कि प्रतिवादी ने गलत तरीके से संपत्ति का कब्जा रोक रखा था, तो ऐसी अंतरिम राहत रद्द हो जाएगी। उपरोक्त चर्चा के आलोक में, यह स्पष्ट है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के लिए निचली अदालत के अंतरिम आदेश में अवैधता या क्षेत्राधिकार की कमी का कोई असाधारण मामला नहीं था।

हालाँकि हम उच्च न्यायालय के इस निर्देश से सहमत हैं कि धारा 630(1) के तहत मुकदमा जल्द से जल्द पूरा किया जाना चाहिए। इसके अलावा, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि दीवानी न्यायालय वाद सं. 2126/2009 में दूसरे प्रतिवादी के पक्ष में डिक्री पारित करता है, तो ऐसी डिक्री का सम्मान किया जाना चाहिए और विवादित संपत्ति का कब्जा तदनुसार उसे बहाल किया जा सकता है।

इसलिए उपरोक्त शर्तों में अपील की अनुमति दी जाती है और आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया जाता है।

अपील की अनुमति दी गई।

**Translation done by Harish Kumar Awasthi, Addl Director of CSJA.